जैन कवि का कुमारसम्भव

—श्री सत्यव्रत

मेघदूत की तरह कालिदास के कुमारसम्भव ने किसी अभिनव साहित्यविद्या का प्रवर्तन तो नहीं किया किन्तु उक्त काव्य से प्रेरणा ग्रहण कर जिन तीन-चार कुमारसम्भव संज्ञक कृतियों की रचना हुई है, उनमें जैन कवि **जयशेखरसूरि का कुमारसम्भव** अपने काव्यात्मक गुणों तथा महाकाव्य-परम्परा के सम्यक् निर्वाह के कारण सम्मानित पद का अधिकारी है। कालिदास कृत कुमारसम्भव की भाँति जैन कुमारसम्भव[1] का उद्देश्य कुमार (भरत) के जन्म का वर्णन करना है। लेकिन जैसे कुमारसम्भव के प्रामाणिक अंश (प्रथम आठ सर्ग) में कार्त्तिकेय का जन्म वर्णित नहीं है, वैसे ही जैन कवि के महाकाव्य में भरतकुमार के जन्म का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। और इस तरह दोनों काव्यों के शीर्षक उनके प्रतिपादित विषय पर पूर्णतया चरितार्थ नहीं होते। परन्तु जहाँ कालिदास ने अष्टम सर्ग में शिव-पार्वती के संभोग के द्वारा कुमार कार्त्तिकेय के भावी जन्म की व्यंजना कर काव्य को समाप्त कर दिया है, वहाँ जैन कुमारसम्भव में सुमंगला के गर्भाधान का निर्देश करने के पश्चात् भी (६/७४) काव्य को पांच अतिरिक्त सर्गों में घसीटा गया है। यह अनावश्यक विस्तार कवि की वर्णनप्रियता के अनुरूप अवश्य है पर इससे काव्य की अन्विति नष्ट हो गयी है, कथा का विकासक्रम विशृंखलित हो गया है और काव्य का अन्त अतीव आकस्मिक ढंग से हुआ है।

कविपरिचय तथा रचनाकाल :

कुमारसम्भव से इसके कर्त्ता जयशेखरसूरि के जीवनवृत अथवा मुनि-परम्परा की कोई सूचना प्राप्त नहीं। काव्य का रचनाकाल निश्चित करने के लिये भी इससे कोई सूत्र हस्तगत नहीं होता। काव्य में प्रान्त-प्रशस्ति के अभाव का यह दुःखद परिणाम है।

अन्य स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि जयशेखर अंचलगच्छ के छप्पनवें पट्टधर महेन्द्रप्रभसूरि के शिष्य, बहुश्रुत विद्वान् तथा प्रतिभाशाली कवि थे। संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में निर्मित उनकी विभिन्न कृतियाँ उनकी विद्वत्ता तथा कवित्व की प्रतीक हैं। जयशेखर की उपदेश-चिन्तामणि की रचना सम्वत् १४३९ में हुई थी। प्रबोधचिन्तामणि तथ धम्मिलचरित एक ही वर्ष सम्वत् १४६२, में लिखे गये।[2] कुमारसम्भव इन तीनों के बाद की रचना है।

१. आर्यरक्षित पुस्तकोद्धार संस्था, जामनगर से प्रकाशित, सम्वत् २०००.

२. हीरालाल कापड़िया : जैन संस्कृत साहित्य नो इतिहास, भाग २, पृ० १६३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयशेखर की यही चार कृतियाँ प्रख्यात हैं। कुमारसम्भव उनकी सर्वोत्तम रचना है, उनकी कीर्ति का आधारस्तम्भ !

जयशेखर के शिष्य धर्मशेखर ने कुमारसम्भव पर टीका सम्वत् १४८२ में अजमेर मण्डल के पद्मर (?) नगर में लिखी थी, यह टीका-प्रशस्ति से स्पष्ट है।

देशे सपादलक्षे सुखलक्ष्ये पद्मरे पुरप्रवरे।
नयनवसुवाधिचन्द्रे वर्षे हर्षेण निर्मिता सेयम् ॥

अतः सं. १४८२ कुमारसम्भव के रचनाकाल की उत्तरी सीमा निश्चित है। धम्मिलचरित की पश्चाद्वर्ती रचना होने के कारण इसका प्रणयन स्पष्टतः सम्वत् १४६२ के उपरांत हुआ होगा। इन दो सीमा-रेखाओं का मध्यवर्ती भाग, सम्वत् १४६२-१४८२ (सन् १४०५-१४२५) कुमारसम्भव का रचनाकाल है।

कथानक :

कुमारसम्भव के ग्यारह सर्गों में आदि जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के विवाह तथा उनके पुत्र-जन्म का वर्णन करना कवि को अभीष्ट है। काव्य का आरम्भ अयोध्या के वर्णन से होता है, जिसका निर्माण धनपति कुबेर ने अपनी प्रिय नगरी अलका की सहचरी के रूप में किया था। इस नगरी के निवेश से पूर्व, जब यह देश इक्ष्वाकुभूमि के नाम से ख्यात था, आदिदेव ऋषभ युग्मिपति नाभि के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे। सर्ग के शेषांश में उनके शैशव, यौवन, रूप-सम्पदा तथा विभूति का चारु चित्रण है। देवगायक तुम्बरु तथा नारद से यह जानकर कि ऋषभ अभी कुमार हैं, सुरपति इन्द्र उन्हें वैवाहिक जीवन में प्रवृत करने के लिये तुरन्त प्रस्थान करते हैं। तृतीय सर्ग में इन्द्र नाना युक्तियां देकर ऋषभदेव को उनकी सगी बहनों—सुमंगला तथा सुनन्दा—से विवाह करने को प्रेरित करते हैं। उनके मौन को स्वीकृति का द्योतक मानकर इन्द्र ने तत्काल देवताओं को विवाह की तैय्यारी करने का आदेश दिया। इसी सर्ग में सुमंगला तथा सुनन्दा के विवाहपूर्व अलंकरण का विस्तृत वर्णन है। पाणिग्रहणोत्सव में भाग लेने के लिये समूचा देवमण्डल भूमि पर उतर आया, मानो स्वर्ग ही धरा का अतिथि बन गया होगा। स्नान-सज्जा के उपरान्त आदिदेव जंगम प्रासाद तुल्य ऐरावत पर बैठ कर वधूगृह को प्रस्थान करते हैं। चौथे तथा पांचवे सर्ग में तत्कालीन विवाह-परम्पराओं का सजीव चित्रण है। पाणिग्रहण सम्पन्न होने पर ऋषभ विजयी सम्राट् की भाँति घर लौट आते हैं। यहीं दस पद्यों में उन्हें देखने को लालायित पुरसुन्दरियों के सम्भ्रम का रोचक वर्णन है। छठा सर्ग रात्रि, चन्द्रोदय, षड्ऋतु आदि वर्णनात्मक प्रसंगों से भरपूर है। ऋषभदेव नवोढा वधुओं के साथ शयनगृह में प्रविष्ट हुए जैसे तत्त्वान्वेषी मति-स्मृति के साथ शास्त्र में प्रवेश करता है। इसी सर्ग के अन्त में सुमंगला के गर्भाधान का उल्लेख है। सातवें सर्ग में सुमंगला को चौदह स्वप्न दिखाई देते हैं। वह उनका फल जानने के लिये पति के वासगृह में जाती है। आठवें सर्ग में ऋषभ तथा सुमंगला का संवाद है। सुमंगला के अपने आगमन का कारण बतलाने पर ऋषभदेव का मन-प्रतिहारी समस्त स्वप्नों को बुद्धिबाहु से पकड़ कर विचार-सभा में ले गया और विचार पयोधि का मन्थन कर उन्हें फल रूपी मोती समर्पित किया। नवें सर्ग में ऋषभ स्वप्नों का फल बतलाते हैं। यह जानकर कि इन स्वप्नों के दर्शन से मुझे चौदह विद्याओं से सम्पन्न चक्रवर्ती पुत्र कि प्राप्ति होगी, सुमंगला आनन्द-विभोर हो जाती है। दसवें सर्ग में वह अपने वासगृह में आती है तथा सखियों को समूचे वृत्तान्त से अवगत करती है। ग्यारहवें सर्ग में इन्द्र सुमंगला के भाग्य कि सराहना करता है और उसे बताता है कि अवधि पूर्ण होने पर तुम्हें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी। तुम्हारे पति का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। तुम्हारे पुत्र के नाम से (भरत से) यह भूमि 'भारत' तथा वाणी 'भारती' कहलाएगी। मध्याह्न-वर्णन के साथ काव्य सहसा समाप्त हो जाता है।

जयशेखर को प्राप्त कालिदास का दाय :

कालिदास के महाकाव्यों तथा जैन कुमारसम्भव के तुलानात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि जैन कवि की कविता, कालिदास के काव्यों, विशेषत: कुमारसम्भव से बहुत प्रभावित है। कालिदास-कृत कुमारसम्भव की परिकल्पना, कथानक के संयोजन, घटनाओं के प्रस्तुतीकरण तथा काव्यरूढियों के परिपालन में पर्याप्त साम्य है। यह बात अलग है कि कालिदास का मनोविज्ञानवेत्ता ध्वनिवादी कवि वस्तुव्यापारों की योजना करके भी कथानक को समन्वित बनाए रखने में सफल हुआ है जब कि जयशेखर महाकवि के प्रबल आकर्षण के आवेग में अपनी कथावस्तु को न संभाल सका। कालिदास के कुमारसम्भव का प्रारम्भ हिमालय के हृदयग्राही वर्णन से होता है, जैन कुमारसम्भव के आरम्भ में अयोध्या का वर्णन है। कालिदास के हिमालय वर्णन के बिम्ब-वैविध्य, यथार्थता तथा सरस शैली का प्रभाव होते हुए भी अयोध्या का वर्णन कवि की कवित्वशक्ति का परिचायक है। महाकवि के काव्य तथा जैन कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में क्रमश: पार्वती तथा ऋषभ देव के जन्म, शैशव, यौवन तथा तज्जन्य सौन्दर्य का वर्णन है। कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में तारक के आतंक से पीड़ित देवताओं का एक प्रतिनिधि-मण्डल ब्रह्मा की सेवा में जाकर उनसे कष्टनिवारण की प्रार्थना करता है। जयशेखर के काव्य में स्वयं इन्द्र ऋषभ को विवाहार्थ प्रेरित करने आता है, और प्रकारान्तर से उस कर्म की पूर्ति करता है जिसका सम्पादन कुमारसम्भव के षष्ठ सर्ग में सप्तर्षि ओषधिप्रस्थ जाकर करते हैं। दोनों काव्यों के इस सर्ग में एक स्तोत्र का समावेश किया गया है। किन्तु जहाँ ब्रह्मा की स्तुति में निहित दर्शन की अन्तर्धारा उसे दर्शन के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करती है, वहाँ जैन कुमारसम्भव में ऋषभदेव के पूर्व भवों तथा सुकृत्यों की गणना मात्र कर दी गयी है। फलत: कालिदास के स्तोत्र के समक्ष जयशेखर का प्रशस्तिगान शुष्क तथा नीरस प्रतीत होता है।

महाकविकृत कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में इन्द्र तथा वसन्त का संवाद पात्रों की व्याहारिकता, आत्मविश्वास, शिष्टाचार तथा काव्यमत्ता के कारण उल्लेखनीय है। जैन कवि ने भी इसी सर्ग में इन्द्र-ऋषभ के वार्तालाप की योजना की है, जो उस कोटि का न होता हुआ भी रोचकता से परिपूर्ण है। इसी सर्ग में सुमंगला तथा सुनन्दा की और चतुर्थ सर्ग में ऋषभदेव की विवाह पूर्व सज्जा का विस्तृत वर्णन सप्तम सर्ग के शिव-पार्वती के अलंकरण पर आधारित है। कालिदास का वर्णन संक्षिप्त होता हुआ भी यथार्थ एवं मार्मिक है, जबकि जैन कुमारसम्भव का वरवधू के प्रसाधन का चित्रण अपने विस्तार के कारण सौन्दर्य के नखशिख निरूपण की सीमा तक पहुँच गया है। कालिदास की अपेक्षा वह अलंकृत भी है, कृत्रिम भी, यद्यपि दोनों में कहीं-कहीं भावसाम्य अवश्य दिखाई देता है।[3] कालिदास के काव्य में सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु आदि देव तथा लोकपाल शंकर की सेवा में उपस्थित होते हैं।[4] जैन कुमारसम्भव में लक्ष्मी, सरस्वती, मन्दाकिनी तथा दिक्कुमारियाँ वधूओं के अलंकरण के लिये प्रसाधन-सामग्री भेंट करती हैं।[5] जैन कुमारसम्भव के पंचम सर्ग में पुरसुन्दरियों की चेष्टाओं का वर्णन रघुवंश तथा कुमारसम्भव के

३ कुमारसम्भव, ७।६, ११, १४, २१ तथा जैन कुमारसम्भव, ४।१५, १७, ३।६४, ४।३१ आदि

४ कुमारसम्भव, ७।४३-४५

५ जैन कुमारसम्भव, ३।५१-५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम सर्ग में अज तथा शिव को देखने को लालायित स्त्रियों के वर्णन से प्रभावित है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि 'पौर ललनाओं का सम्भ्रम-चित्रण' संस्कृत महाकाव्य की वह रूढि है जिसका जैन कवियों ने साग्रह तथा मनोयोगपूर्वक निर्वाह किया है यद्यपि कुछ काव्यों में वह स्पष्टतः हठात् ठूँसी गयी प्रतीत होती है।[६]

दोनों कुमारसम्भव में वर्ण्य विषयों के अन्तर्गत रात्रि, चन्द्रोदय तथा ऋतुवर्णन को स्थान मिला है।[७] यद्यपि जैन कवि के वर्णनों में कालिदास की-सी मार्मिकता ढूंढना निरर्थक है तथापि ये जैनकुमारसम्भव के वे स्थल हैं जिनमें उत्कृष्ट काव्य का उन्मेष हुआ है। दोनों काव्यों में दैवी नायकों को मानवरूप में प्रस्तुत किया गया है भले ही जैन कवि ऋषभचरित की पौराणिकता से कुछ अधिक अभिभूत हो। कालिदास के कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग का स्वच्छन्द सम्भोगवर्णन पवित्रतावादी जैन यति को ग्राह्य नहीं हो सकता था, अतः उसने नायक-नायिका के शयनगृह में प्रवेश तथा सुमंगला के गर्भाधान के द्वारा इस ओर संयत संकेत मात्र किया है।[८] यह स्मरणीय है कि दोनों काव्यों में पुत्रजन्म का अभाव है, फलतः उनके शीर्षक कथानक पर पूर्णतः घटित नही होते।

नायक-नायिका के संवाद की योजना दोनों काव्यों में की गयी है। परन्तु कालिदास के उमा-बटु-संवाद की गणना, उसकी नाटकीयता एवं सजीवता के कारण, संस्कृत-काव्य के सर्वोत्तम अंशों में होती है जबकी सुमंगला तथा ऋषभ का वार्त्तालाप साधारणता के धरातल से ऊपर नहीं उठ सका है। पाणिग्रहण सम्पन्न होने के उपरान्त कुमारसम्भव में हिमालय के पुरोहित ने पार्वती को पति के साथ धर्माचरण का उपदेश केवल एक पद्य (७।८३) में दिया है। जैन कुमारसम्भव में इन्द्र तथा शची क्रमशः वरवधू को पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों तथा कर्त्तव्यों का विस्तृत बोध देते हैं।[९] दोनों काव्यों में विवाह के अवसर पर प्रचलित आचारों का निरूपण किया गया है। जैन कुमारसम्भव में उनका वर्णन बहुत विस्तृत है। कृत्रिमता तथा अलंकृति-प्रियता के युग में भी जयशेखर की शैली में जो प्रसाद तथा आकर्षण है, उस पर भी कालिदास की शैली की सहजता एवं प्राञ्जलता की छाप है।

समीक्षात्मक विश्लेषण :

जैन कुमारसम्भव के कथानक की परिकल्पना तथा विनियोग (Conception and treatment) निर्दोष नहीं कहा जा सकता ! फलागम के चरम बिन्दु से आगे कथानक के विस्तार तथा मूल भाग में अनुपातहीन वर्णनों का समावेश करने के पीछे समवर्ती काव्य परिपाटी का प्रभाव हो सकता है किन्तु यह पद्धति निश्चित रूप से कथा-वस्तु के संयोजन में कवि के अकौशल की द्योतक है। जयशेखर के लिये कथा-वस्तु का महत्त्व आधारभूत तन्तु से बढ़ कर नहीं, जिसके चारों ओर उसकी वर्णनात्मकता ने ऐसा जाल बुन दिया है कि कथासूत्र यदा कदा ही दीख पड़ता है। जैन कुमारसम्भव का कथानक इतना स्वल्प है कि यदि निरी कथात्मकता को लेकर चला जाए तो यह तीन-चार सर्गों से अधिक की सामग्री सिद्ध नहीं हो सकती। किन्तु जयशेखर ने उसे वस्तुव्यापार के विविध वर्णनों, संवादों तथा स्तोत्रों से पुष्ट-पूरित कर ग्यारह सर्गों का विशाल वितान खड़ा कर दिया है। वर्णनप्रियताकी यह

६ हम्मीर महाकाव्य, ६।५४-७१, सुमतिसम्भव (अप्रकाशित), ४।२५-३२, हीरसौभाग्य आदि.
७ जैन कुमारसम्भव, ६।१-२२, ५२-७१., कुमारसम्भव, ७।५३–७४, ३।२५–३४
८ जैन कुमारसम्भव, ६।२३, ७४
९ वही, ५।५८-८३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्ति काव्य में आद्यन्त विद्यमान है। प्रथम छह सर्ग अयोध्या, काव्यनायक के शैशव एवं यौवन, वधुओं के अलंकरण, वैवाहिक रीतियों, रात्रि, चन्द्रोदय, षड् ऋतु के वर्णनों से भरे पड़े हैं। यह ज्ञातव्य है कि काव्य के यत्किंचित् कथानक का मुख्य भाग यहीं समाप्त हो जाता है। शेष पांच सर्गों में से स्वप्नदर्शन (सप्तम सर्ग) तथा उनके फल कथन (नवम सर्ग) का ही मुख्य कथा से सम्बन्ध है। आठवें तथा नवें सर्गों की विषयवस्तु को एक सर्ग में आसानी से समेटा जा सकता था। दसवां तथा ग्यारहवां सर्ग तो सर्वथा अनावश्यक है। यदि काव्य को नौ सर्गों में ही समाप्त कर दिया जाता तो शायद यह अधिक अन्वितिपूर्ण बन सकता। ऋषभदेव के स्वप्नफल बताने के पश्चात् इन्द्र द्वारा उसकी पुष्टि करना न केवल निरर्थक है, इससे देवतुल्य नायक की गरिमा भी आहत होती है। इस प्रकार काव्यकथा का सूक्ष्म तन्तु वर्णन-स्फीति के भार से पूर्णतः दब गया है। वस्तुतः काव्य में इन प्रासंगिक-अप्रासंगिक वर्णनों की ही प्रधानता है। मूल कथा के निर्वाह की ओर कवि ने बहुत कम ध्यान दिया है। उसके लिये वर्ण्य विषय की अपेक्षा वर्णन शैली प्रमुख है!

मानव-हृदय की विविध अनुभूतियों का रसात्मक चित्रण करने में जयशेखर सिद्धहस्त है, जिसके फलस्वरूप कुमारसम्भव सरसता से आर्द्र है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार शृंगार को इसका प्रमुख रस माना जा सकता है यद्यपि अंगी रस के रूप में इसका परिणाम नहीं हुआ है। जैन कुमारसम्भव में शृंगार के कई सरस चित्र देखने को मिलते हैं। काव्य में शृंगार की मधुरता का परित्याग न करना पवित्रतावादी जैन कवि की बौद्धिक ईमानदारी है।

ऋषभदेव के विवाह में आते समय प्रियतम का स्पर्श पाकर किसी देवांगना की मैथुनेच्छा जाग्रत हो गयी। भावोच्छ्वास से उनकी कंचुकी टूट गयी। वह कामवेग के कारण विह्वल हो गयी, फलतः वह प्रिय को मनाने के लिये उसकी चाटुता करने लगी :

उपात्तपाणिस्त्रिदशेन वल्लभा श्रमाकुला काचिदुदंचिकंचुका।
वृषास्यया चाटुशतानि तन्वती जगाम तस्यैव गतस्य विघ्नताम् ॥४।१०

नवविवाहित ऋषभकुमार को देखने को उत्सुक एक पुर-युवती की अधबंधी नीवी, दौड़ने के कारण खुल गयी। उसका अधोवस्त्र नीचे खिसक पड़ा, किन्तु उसे इसका भान भी नहीं हुआ। वह प्रेम पगी नायक की झलक पाने के लिए दौड़ती गयी और जन समुदाय में मिल गयी!

कापि नार्धयमितश्लथनीवी प्रक्षरन्निवसनापि ललज्जे।
नायकाननिवेशितनेत्रे जन्यलोकनिकरेऽपि समेता ॥५।३९

काव्य में वात्सल्य, भयानक तथा हास्य रस शृंगार के पोषक बन कर आए हैं। ऋषभ के शैशव के चित्रण में वात्सल्य रस की छटा दर्शनीय है। शिशु ऋषभ दौड़ कर पिता को चिपट जाता है। उसके अंगस्पर्श से पिता विभोर हो जाते हैं। हर्षातिरेक से उनकी आँखें बन्द हो जाती हैं और वे 'तात तात' की गुहार करने लगते हैं।

दूरात् समाहूय हृदोपपीडं माद्यन्मुदा मीलितनेत्रपत्रः।
अथांगजं स्नेहविमोहितात्मा यं तात तातेति जगाद नाभिः ॥४।२८

पौर युवतियों के सम्भ्रम-चित्रण के अन्तर्गत, निम्नोक्त पद्य में हास्य रस की रोचक अभिव्यक्ति हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृणिमूढदृगपास्य रुदन्तं पोतमोतुमधिरोप्य कटीरे ।
कापि धावितवती नहि जज्ञे हस्यमानमपि जन्यजनैः स्वम् ।।५।४१

विभिन्न रसों के चित्रण में निपुण होते हुए भी जयशेखर अपने काव्य में किसी रस का प्रधान रस के रूप में पल्लवन करने में असफल रहे यह आश्चर्य की बात है ।

जैनकुमारसम्भव के वर्णन-बाहुल्य में प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण को पर्याप्त स्थान मिला है । जयशेखर का प्रकृति-चित्रण भारवि, माघ आदि की कोटि का है, जिसमें उक्ति-वैचित्र्य के द्वारा प्रकृति के अलंकृत चित्र अंकित करने पर अधिक बल दिया गया है । परन्तु जैन कुमारसम्भव के प्रकृतिचित्रण की विशेषता यह है कि वह यमक आदि की दुरूहता से आक्रान्त नहीं और न ही उसमें कुरुचिपूर्ण शृंगारिकता का समावेश हुआ है । इसलिये जयशेखर के रात्रि, चन्द्रोदय, प्रभात आदि के वर्णनों का अपना आकर्षण है । प्रकृति के ललित कल्पनापूर्ण चित्र अंकित करने में कवि को अद्भुत सफलता मिली है । रात्रि कहीं गजचर्मावृत तथा मुण्डमालाधारी महादेव की विभूति से विभूषित है, तो कहीं वर्णव्यवस्था के कृत्रिम भेद को मिटानेवाली क्रान्तिकारी योगिनी है ।

अभुक्त भूतेशतनोर्विभूति भौति तमोभिः स्फुटतारकौघा ।
विभिन्नकालच्छविदन्तिदैत्यचर्मावृतेर्भूरिनरास्थिभाजः ।।६।३
किं योगिनीयं धृतनीलकन्था तमस्विनी तारकशंखभूषा ।
वर्णव्यवस्थामवधूय सर्वामभेदवादं जगतस्ततान ।।६।८

रात्रि वस्तुतः गौरवर्ण थी । वह सहसा काली क्यों हो गयी है । इसकी कमनीय कल्पना निम्नोक्त पद में की गयी है । यह अनाथ सतियों को सताने का फल है कि उनके शाप की ज्वाला में दह कर रात्रि की काया काली पड़ गयी है :

हरिद्रयं यदभिन्ननामा बभूव गौर्येव निशा ततः प्राक् ।
सन्तापयन्ती तु सतीरनाथास्तच्छापदग्धाजनि कालकाया ।।६।७

प्रौढोक्ति के प्रति अधिक प्रवृति होते हुए भी जयशेखर प्रकृति के सहज रूप से पराङ्मुख नहीं है कुमारसम्भव में प्रकृति के स्वाभाविक चित्र भी प्रस्तुत किए गये हैं । किन्तु यह स्वीकार करने में हिचक नहीं होनी चाहिए कि प्रकृति के आलम्बन पक्ष की ओर उसका रुझान अधिक नहीं है । षड् ऋतु[१०] प्रभात तथा सूर्योदय[११] के वर्णन में प्रकृति के सहज पक्ष के कतिपय चित्र दृष्टिगत होते हैं । प्रातःकालीन समीर का प्रस्तुत वर्णन अपनी स्वाभाविकता के कारण उल्लेखनीय है :

दिनवदनविनिद्रीभूतराजीवराजी-
परमपरिमल श्रीतस्करोऽयं समीरः ।
सरिदपहृतशैत्यः किञ्चिदाधूय वल्ली-
भ्रमति भुवि किमेष्यच्छूर भीत्याऽव्यवस्यम् ।।१०।८१

१० जैन कुमारसम्भव, ६।५३, ५६, ६३.

११ वही, ११।१, १०, ५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारसम्भव की प्रकृति मानव के सुख-दुःख से निरपेक्ष जड़ प्रकृति नहीं है। उसमें मानवीय भावनाओं एवं क्रियाकलापों का स्पन्दन है। प्रकृति पर सप्राणता आरोपित करके जयशेखर ने उसे मानव जगत् की भाँति विविध चेष्टाओं में रत अंकित किया है। प्रभात वर्णन के प्रस्तुत पद्य में कमल को मन्त्रसाधक के रूप में चित्रित किया है जो गहरे पानी में खड़ा होकर मन्त्रजाप के द्वारा प्रतिनायक चन्द्रमा से लक्ष्मी को छीन कर उसे पत्रशय्या पर ले जाता है।

गम्भीराम्भःस्थितमथ जपन्मुद्रितास्यं निशाया-
मन्तर्गुञ्जन्मधुकरमिषान्तूनमाकृष्टिमन्त्रम्।
प्रातर्जातस्फुरणमरुणस्योदये चन्द्रबिम्बा—
दाकृष्याब्जं सपदि कमलां स्वांकलतल्पीचकार॥ १०।८४

कुमारसम्भव में नर-नारी के कायिक सौन्दर्य का भी विस्तृत वर्णन हुआ है। सौन्दर्य-चित्रण में कवि ने दो प्रणालियों का आश्रय लिया है। एक ओर विविध उपमानों की योजना के द्वारा नखशिख विधि से वर्ण्य पात्र के विभिन्न अवयवों का सौन्दर्य प्रस्फुटित किया गया है, तो दूसरी ओर प्रसाधन सामग्री से पात्रों के सहज सौन्दर्य को वृद्धिगत किया गया है। कवि की उक्ति-वैचित्र्य की वृत्ति तथा सादृश्यविधान की कुशलता के कारण उसका सौन्दर्यचित्रण रोचकता तथा सरलता से मुखर है। जहाँ कवि ने नवीन उपमानों की योजना की है, वहाँ वर्ण्य अंगों का सौन्दर्य साकर हो गया है और कवि-कल्पना का मनोरम विलास भी दृष्टिगत होता है। सुमंगला तथा सुनन्दा की शरीर-यष्टि की तुलना स्वर्ण-कटारी से करके कवि ने उनकी कान्ति की नैसर्गिकता तथा वेधकता का सहज भान करा दिया है।

तनूस्तदीया ददृशेऽमरीभिः संवेतशुभ्रामलमंजुवासा।
परिस्फुटस्फाटिककोशवासा हैमीकृपाणीव मनोभवस्य॥ ३।६८

कुमारसम्भव की कथावस्तु में केवल चार पात्र हैं। उनमें से सुनन्दा की चर्चा तो समूचे काव्य में एक-दो बार ही हुई है। शेष पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का भी मुक्त विकास नहीं हो सका है। इन्द्र यद्यपि काव्य कथा में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है पर उसके चरित्र की रेखाएँ धूमिल ही हैं। वह लोकविद् तथा व्यवहारकुशल है। उसकी व्यवहार-कुशलता का ही यह फल है कि वीतराग ऋषभ उसकी नीतिपुष्ट युक्तियों से वैवाहिक जीवन अंगीकार करने को तैयार हो जाते हैं।

ऋषभदेव काव्य के नायक हैं। उनका चरित्र पौराणिकता से इस प्रकार आक्रान्त है कि उसका स्वतन्त्र चित्रण सम्भव नहीं। पौराणिक नायक की भांति वे नाना अतिशयों तथा विभूतियों से भूषित हैं। लोकस्थिति के परिपालन के लिये उन्होने विवाह तो किया, किन्तु काम उनके मन को जीत नहीं सका। उनमें आकर्षण और विकर्षण का अद्‌भुत मिश्रण है। काव्य की नायिका सुमंगला उनके व्यक्तित्व के प्रकाश पुंज से हतप्रभ निष्प्राण जीव है। काव्य में उसके द्वारा की गयी नारी-निन्दा उसके अवचेतन में छिपी हीनता को प्रकट करती है।

जैन कुमारसम्भव की प्रमुख विशेषता इसकी उदात्त एवं प्रौढ़ भाषाशैली है। संस्कृत महाकाव्य के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ह्रासकाल की रचना होने पर भी इसकी भाषा माघ अथवा मेघविजयगणि की भाषा की भाँति विकट समासान्त अथवा कष्टसाध्य नहीं है। काव्य में बहुधा प्रसादपूर्ण तथा भावानुकूल पदावली का प्रयोग हुआ है। यद्यपि काव्य में विभिन्न कोटि की स्थितियाँ अधिक नहीं हैं किन्तु विषय एवं प्रसंग के अनुरूप पदावली प्रयुक्त करने में कवि की क्षमता सन्देह से परे है। उसका व्याकरणज्ञान असन्दिग्ध है। विद्वत्ता प्रदर्शित करने का कवि का आग्रह नहीं किन्तु लुङ् तथा लिट्, विशेषकर कर्मवाच्य में, के प्रति उसका पक्षपात स्पष्ट है।[१२] काव्य में कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त किए गये हैं जो नितान्त अप्रचलित हैं। कतिपय सामान्य शब्दों का प्रयोग असाधारण अर्थ में हुआ है।[१३] कुमारसम्भव सुमधुर तथा भावपूर्ण सूक्तियों का विशाल कोश है। अवश्य ही इनमें से कुछ लोक में प्रचलित रही होंगी![१४]

अलंकारों की सुरुचिपूर्ण योजना काव्य शैली को समृद्ध बनाती है तथा उसके सौन्दर्य में वृद्धि करती है। हेमचन्द्र, वाग्भट आदि जैनाचार्यों के विधान का उल्लंघन करके काव्य में चित्रबन्ध का समावेश न करना जयशेखर की भाषात्मक सुरुचि का प्रमाण है। कुमारसम्भव में अलंकार इस सहजता से आए हैं कि उनसे काव्य-सौन्दर्य स्वतः प्रस्फुटित होता जाता है तथा भाव प्रकाशन को समर्थता तथा सम्पन्नता मिलती है। जयशेखर के यमक और श्लेष में भी दुरूहता नहीं है। दसवें सर्ग में सुमंगला की सखियों के नृत्य तथा विभिन्न दार्शनिक मतों के श्लिष्ट वर्णन में श्लेष ने काव्यत्व को अवश्य दबोच लिया है। जयशेखर ने भावोद्बोध के लिये प्रायः सभी मुख्य अलंकारों का प्रयोग किया है। श्लेष और अर्थान्तरन्यास उसके प्रिय अलंकार हैं।

छन्दों की योजना में कवि ने शास्त्रीय विधान का पालन किया है। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द प्रयुक्त हुआ है जो सर्गान्त में बदल जाता है। काव्य में उपजाति का प्राधान्य है। सब मिलाकर कुमारसम्भव में अठारह छन्दों का प्रयोग किया गया है।

---

१२ अधरैर्धरैर्बभूवे। २,१७, पराभिराभिर्नवरं जिजीवे--३.५४, विबुधैः फलं जगे--४.२५, सुखं सिषेवे किमु रत्नराशिना--६.७१, कैश्चिद् जगदे तदेति--११.५, दृगध्वनावामि--२.६, महीमहीनत्वमुपासिष्ठषीष्ट ताम्--२.६७, आलम्बि रोलम्बगणैर्विलम्बः ३.४५ विभूषणं तैस्तदमानि दूषणम्--४.३०, युवाक्षिभृगैस्तदरामि--६.२१, हारि मा तदिदमद्य निद्रया-१०.५२, अवेदि नेदीयसि देवराजे १८.५६.

१३ द्रोणी-नौका, अनालम्-सम्यक्, वज्रमुखः-गरुड, पुलाकी-वृक्ष, महाबलम्-वायु, तृणध्वजः-बांस, वृषः-पुण्य, विज्जुल-कलुषित, खण्डम्-वन, उद्वेग-सुपारी, स्मरध्वज-वादित्र, संचर-शरीर, प्रान्तर-मार्ग, आदीनवः-दोष, कुलम्-आवास, भौती-रात्रि, विरोकः-किरण, अवग्रहः-विघ्न, अन्तर्गडु-निरर्थक, निन्द्यदिक्-दक्षिण दिशा, प्रशलर्तु-हेमन्त, चूर्णि-अन्न, तोयार्द्रा-तौलिया, पिण्डोल-झूठन, निविरीस-निविड, रजनी-हरिद्रा. ताविषः-स्वर्ग, स्तानवम्-गतिलाघव, प्रमद्वरा-प्रमादिनी, महानादः-सिंह, मार्जिता-रस, भोजन, शुचिः-सूर्य, अंहति-दान!

१४ कतिपय सूक्तियाँ—१. यदुद्भवो यः स तदाभचेष्टितः-२. ६., २. तृषा हि तातोनतया सुसूनुषु-२.६३, ३. स्याद् यत्र शक्तेरवकाश-नाशः श्रीयेत शूरैरपि तत्र साम-३.१५, ४. न कोऽथवा स्वेऽवसरे प्रभूयते-४.६६, ५. रागमेधयति रागिषु सर्वम्-५.१६., ६. कालेन विना क्व शक्तिः-६.५, ७. शक्तौ सहना हि सन्तः-६.२६, ८. जात्यरत्नपरीक्षायां बालाः किमधिकारिणः ७. ६८, ६. अतित्वरी विघ्नकरीष्टसिद्धेः-८.६२, १०. अहो कलत्रं हृदयानुयायि कलानिधीनामपि भाग्यलभ्यम् ६.६. ११. अहो यशो भाग्यवशोपलभ्यम् ११, ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनकुमारसम्भव का वास्तविक सौन्दर्य तथा महत्त्व उसके वर्णनोंमें निहित है । इनमें एक ओर कविका कवित्व मुखरित है और दूसरी ओर जीवनके विभिन्नपक्षों तथा व्यापारोंसे सम्बन्धित होनेके कारण इनमें समसामयिक समाजकी चेतना का स्पन्दन है । इन वर्णनों के माध्यमसे ही काव्यमें समाज का व्यापक चित्र समाहित हो सका है जो महाकाव्यके एक बहुअपेक्षित तत्त्वकी पूर्ति करता है । इसलिए जैनकुमारसम्भवसे तत्कालीन वैवाहिक परम्पराओं, राजनीति तथा भोजनविधिसे लेकर प्रसाधनसामग्री, आभूषणों, वाद्ययन्त्रों, समुद्री व्यापार, अभिनय, सामाजिक मान्यताओं, मदिरापान आदि कुरीतियोंके विषयमें महत्त्वपूर्णसामग्री उपलब्ध होती है । इस प्रकार जैनकुमारसम्भव साहित्यिक दृष्टि से उत्तम काव्य है, और इसमें युगजीवन की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है ।

❀ ❀ ❀

एगओ वरई कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्ति च, संजमे य पवत्तणं ॥

एक तरफ निवृत्ति और दूसरी तरफ प्रवृत्ति करना चाहिए—असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति ।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो ॥

क्रोध प्रीति का, मान विनय का, माया मैत्री का, और लोभ सभी का नाश करता है ।

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चऽज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥

क्षमा से क्रोध को हरो, नम्रता से आदर को जीतो, सरल स्वभाव से ममता पर और सन्तोष से लोभ पर विजय प्राप्त करो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org